# श्री कालीकर्पूर स्तोत्र

(विनोदिनी टीका सहित)



टीकाकार

वैद्य काशीप्रसाद शुक्ल 'शास्त्री'

प्रकाशक

श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्

दतिया (म. प्र.)

# श्री कालीकर्पूर स्तोत्र

(विनोदिनी टीका सहित)

टीकाकार
वैद्य काशीप्रसाद शुक्ल 'शास्त्री'

प्रकाशक
श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म. प्र.)

प्रकाशक

**श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्**

**दतिया (म. प्र.)**





प्रथम आवृति १००० प्रतियाँ

शारदीय नवरात्र सं. २०४६

**मूल्य–[illegible] रु.**

10/



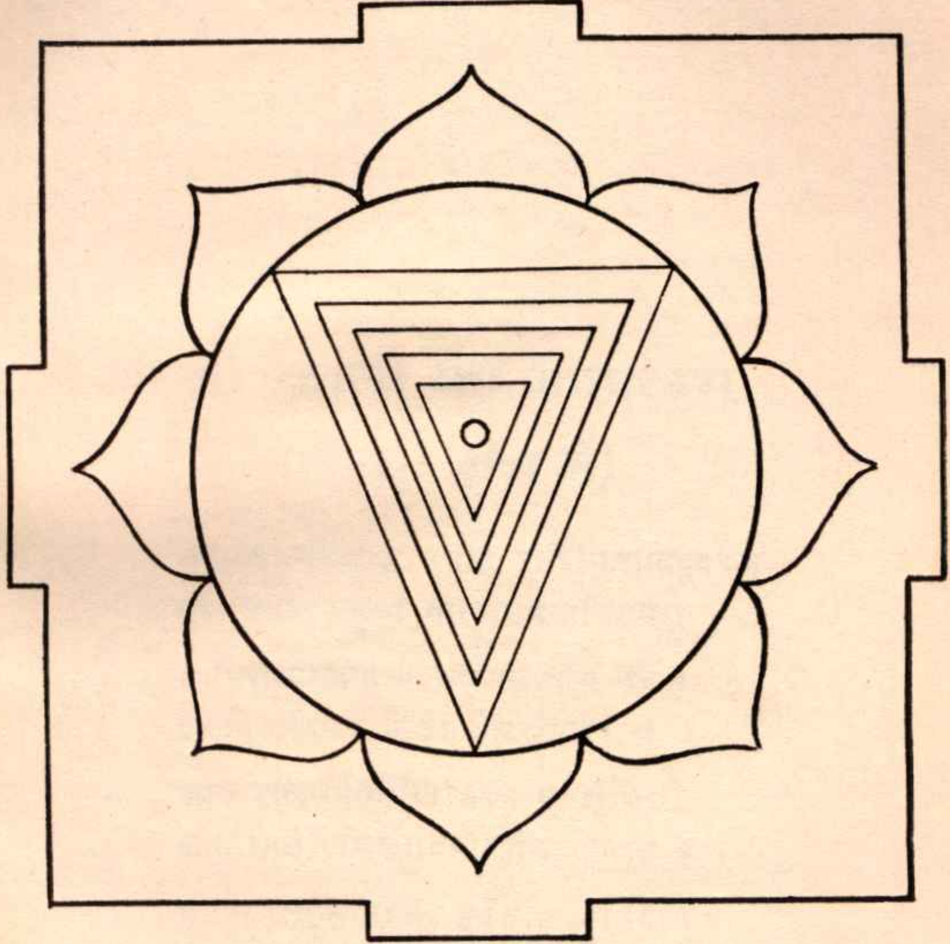
मुद्रक :

**स्वाती एण्टर प्राइज**

२०, ग्रेट नाग रोड,

नागपुर–९

# श्री काली पूजा यन्त्र



**ध्यान**

सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीम्,
घोरास्यां शिरसां स्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम्।
सृक्कासृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतिम्,
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम् ॥

# श्री काली का माहात्म्य
## (भैरवी तंत्र में)

नात्रचित्ताविशुद्धिः स्यात् नारिमित्रादिदूषणम् ।
नवा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम् ॥

न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं नच ।
देवैर्देवत्वविधये सिद्धैः खेचरसिद्धये ॥

पन्नगै राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ।
कामिभिर्धर्मिभिश्चार्थमीप्सुभिः सेव्यते सदा ॥

य एनां चिन्तयेन्मंत्री सर्वकामसमृद्धिदाम् ।
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्नसंशयः ॥

तस्यदर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ।
राजानोऽपि च दासत्वं भजन्ते किं परेजनाः ॥

बह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः ।
व्यत्ययं च दिवारात्र्योः स कर्तुं भवति क्षमः ॥

अन्ते च लभते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ।
चन्द्रसूर्यसमोभूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥

न तस्य दुर्लभं किंचिद्यः स्मरेद् घोरकालिकाम् ।

तंत्रान्तरेऽपि–

कलौकाली कलौकाली कलौकाली तु केवला ।
साधिता कालनाथेन प्रत्यक्षा कालिका कलौ ॥
कलौ काली विहायान्यत्–यः कश्चिन्मोक्षकामुकः ।
सभोजनं बिनानूनं क्षुन्निवृत्तिमभीप्सति ॥
कालौ कालीं विहायाथ यः कश्चिच्छान्तिमिच्छति ।
स हि शीतनिवृत्त्यर्थं हिमशैलं निषेवते ॥
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित्काव्यमिच्छति ।
स तु दुःखनिवृत्त्यर्थं पापानि कुरुते सदा ॥
श्री महाकालिकाविद्या कलौ पूर्णफलप्रदा ।
यस्याः कलिर्हि दासस्य पादपूजां करोति हि ॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि सलीलं वा सहेलय ।
स्मृताऽपिसिद्धिदा काली सकृदेव महेश्वरि ॥
सिद्धिविद्या महाविद्या विद्याभेदैः प्रतिष्ठिता ।
उपविद्यादिभेदैश्च कालिका संस्थिता भुवि ॥
ताराद्याः सकला विद्याः कालिकायाः प्रजज्ञिरे ।
सर्वाविद्याः स्थिताः सन्ति कालिकायान्तु पार्वति ॥

**उपर्युक्त पद्यों की भाषा टीका**–भैरवी तंत्र में श्री मां काली का माहात्म्य इस प्रकार वर्णन किया गया है । इनके पूजन में चित्त की अविशुद्धि का विचार नहीं है एवं शत्रुमित्र का दोष भी नहीं है । कायाक्लेश भी अधिक नहीं । समयासमय का विचार नहीं । बहुत धन खर्च की भी आवश्यकता नहीं है । केवल साधक की सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति की अपेक्षा है । देवता देवत्वविधि के लिए, सिद्ध गण खेचर सिद्धि के लिए, नाग, राक्षस, मनुष्य तथा मुमुक्षु मुनिसमूह मोक्ष की कामना से,–कामनेच्छु, धार्मिक, अर्थार्थी सभी सदा मां काली की उपासना करते हैं । जो साधक सर्व कामना समृद्धि को देनेवाली मां काली का हृदय से चिन्तन करता है अर्थात् इन के ध्यान में रत रहता है उसके हाथ में सदैव समस्तसिद्धियां

विद्यमान रहती हैं। इस में तनिक भी सन्देह नहीं है। ऐसे साधक के दर्शन मात्र से विवाद करने वाले निष्प्रभ हो जाते हैं। राजा भी उसके सेवक हो जाते हैं। दूसरों की तो गणना ही क्या ?। इतना ही नहीं–भगवती मां काली का उपासक अग्नि को शीतल, जल का स्तम्भन, सूर्य की गति को भी रोकने की सामर्थ्य एवं दिन रात्रि का व्यत्यय अर्थात् दिन को रात्रि और रात्रि को दिन बना सकने की शक्ति रखता है। जीवन के अन्त में मां के गणों में सम्मिलित हो जाता है अर्थात् मां का सामीप्य सान्निध्यादि सिद्धि प्राप्त करता है तथा सोम सूर्य की भांति तेजस्वी होकर दशसहस्र कल्पों तक मां के लोक में निवास करता है। उसके लिए कुछ दुर्लभ नहीं रहता है। दूसरे तन्त्रों में भी कहा गया है कि–कलि-काल में काली ही सद्यः सिद्धिदात्री हैं। इनकी साधना भगवान् कालनाथने की है। यह दक्षिणा कालिकी कर्पूरस्तोत्र उन्हीं का बनाया हुआ है। कलियुग में जो मां काली को छोड़कर मोक्ष चाहता है उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह भोजन के किये बिना ही क्षुधा की निवृत्ति करना चाहता है। कलियुग में काली को छोड़कर जो शान्ति चाहता है वह शीतनिवारणार्थ हिमालय का सेवन करता है। मां काली की अर्चना–उपासना के बिना जो कवि बनना चाहता है वह दुःख निवृत्तिके लिए पाप ही करता है। इसयुग में मां कालिका ही आशु पूर्ण फल प्रदान करती हैं। क्यों कि कलिकाल स्वयं मां के भक्तों का सेवक है। भगवान् शिवजी श्री पार्वती माता से कहते हैं कि हे पार्वति ! महेश्वरि ! ज्ञान से, अज्ञान से, लीला पूर्वक अथवा तिरस्कार रूप में किसी प्रकार भी मां भगवती कालिका का स्मरण करना तुरन्त सिद्धि प्रदान करता है। विद्याओं के जितने भी भेद हैं जो कि प्रतिष्ठित हैं तथा उपविद्यायें हैं उनमें सबों में मां काली स्थित हैं तारा आदि समस्त विद्यायें काली से ही उत्पन्न हुई हैं और ये सदा काली में ही स्थित हैं।

**–वैद्य काशीप्रसाद शुक्ल 'शास्त्री'**

# भूमिका

श्री दक्षिणा काली कर्पूर स्तोत्र की महिमा एवं उसमें वर्णित मंत्रों की साधनविधियां तथा उनकी सिद्धियों के विषय में काली कुल के उच्चपरम्परा के साधकों को भलीभांति विदित है। तभी तो इस कुल के साधक सर्वोत्कृष्ट विद्वत्ता और सर्वैश्वर्य महार्घता में अद्वितीय ही पाये जाते हैं। यह बात कई पद्यों में इस स्तोत्रमें भी कही गई है। पूर्व काल में कवि कुलगुरु महाकवि कालिदासजी मां काली की उपासना से ही कालीदास कहलाते थे तथा विद्वानों में मुकुटमणि के सदृश देदीप्यमान् थे। इस स्तोत्र में एक विलक्षण विशेषता यह है कि मंत्रद्वाविंशाक्षरी की भांति ही इसके पद्य (श्लोक) भी बाइस ही हैं।

इस स्तव को किसने कब बनाया यह श्री काली माहात्म्य में स्पष्ट किया गया है। यह महाकाल सदाशिव की ही रचना है इसके प्रमाण विविध तंत्र ग्रंथों में हैं।

संवत् १९८५ में इसकी दीपिका नाम की टीका राजाश्रयी परम विद्वान् राजपण्डित राजरंगनाथजी ने तथा भूतपूर्व काशीस्थ राजकीय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राचार्य साहित्याचार्य श्रीमान् पण्डित नारायण शास्त्री खिस्ते जी ने परिमल नाम की टीका की थी। इन दोनों टीकाओं से युक्त कर्पूर स्तव इस समय भी मिलता है। दोनों टीकाकार अब नहीं रहे। वे स्वर्गीय हो गये हैं। दोनों महानुभावों की टीकायें प्रमेयप्रमाणों से संयुक्त अत्युच्चकोटि की हैं जोकि संस्कृतज्ञ साधकों के ही उपयोग में आती हैं।

मुझे जहां तक जानकारी है उससे मैं कह सकता हूँ कि अभीतक इस स्तव की भाषा टीका नहीं हुई है। उपर्युक्त टीकाओं से असंस्कृतज्ञ श्री काली के भक्तों को कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होता है। इस कमी को दूर करने के लिए मुझसे कई श्री काली के असंस्कृतज्ञ भक्तमित्रोंने आग्रह किया कि हो सके तो आप इस विषय में परिश्रम एवं प्रयत्न करने का साहस करें। अवकाश न मिलने तथा वार्धक्यजनित शिथिलता के कारण साहस नहीं होता था परन्तु कुछ ऐसा संयोग उपस्थित हो गया कि कई अभिन्नमित्रों की प्रेरणा स्वीकार करनी ही पड़ी क्योंकि यह कार्य पूर्ण करने के लिए मुझको जो भी आवश्यकतायें थीं उन्हें पूर्ण करने की जिम्मेदारी प्रेरकमित्रोंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अस्तु, इस टीका का नाम विनोदिनी है। इससे यदि महाकाल सहित परम भट्टारिका महाराज्ञी जगज्जननी दक्षिणा कालिका मां को तथैव उनके प्रेमी सद्भक्तों को मेरे श्रमसे कुछ भी विनोद प्राप्त हो सका तो मैं अपने को कृतकृत्य एवं भाग्यशाली मानूंगा।

शारदीय नवरात्र<br>संवत् २०४६<br>सितम्बर १९८९

विनीत<br>वैद्य काशीप्रसाद शुक्ल शास्त्री<br>प्रयाग



ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य अनन्तश्री श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म० प्र०)

# * श्री काली कर्पूरस्तोत्र *

(विनोदिनी टीका सहित)

## मंगलाचरणम्

**गणेशंच गिरं देवीं श्री गुरुं स्वेष्टदेवताम् ।**
**महाकालं महाकालीं भूयोभूयो नमाम्यहम् ।।**

**महाकाल महाकालीविनोदाय हि सर्वदा ।**
**नाम्नीं विनोदिनीं टीकां करोम्यतिसुन्दरीम् ।।**

**मदीया वाङ्मयी पूजा कालीकालपदाब्जयो: ।**
**समर्पिता मया भक्त्या प्रसन्नौ भवतां सदा ।।**

**स्तोत्र का विनियोग––**

अस्य श्री दक्षिणाकालीकर्पूरस्तोत्रस्य श्री महाकाल ऋषि: । गायत्री छन्द: । श्री दक्षिणा कालिका देवता । हलोबीजानि । स्वरा: शक्तय: । अव्यक्तं कीलकम् । श्री दक्षिणा काली देवता-प्रीत्यर्थे पाठे विनियोग: ।

**ऋष्यादिन्यास:––**

श्री महाकाल ऋषये नम: शिरसि । गायत्री छन्दसे नमो मुखे । श्री दक्षिणाकालिका देवतायै नमो हृदि । हलोबीजेभ्यो नमो गुह्ये । स्वरा: शक्तिभ्यो नम: पादयो: । अव्यक्तं कीलकाय नमो नाभौ । श्रीदक्षिणाकाली देवता प्रीत्यर्थे विनियोगाय नम: सर्वांगेषु ।

क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्र: से करन्यास तथा हृदयादिन्यास करके तब स्तोत्र पाठ करना चाहिये ।

कर्पूरं मध्यमान्त्य स्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं,
बीजं ते मातरेतत् त्रिपुरहरवधु त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषां गद्यानि पद्यानिच मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः,
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धि गतानाम् ॥१॥

परम प्रकाशात्मक भगवान् महाकाल स्वविमर्श रूपिणी पर देवता महाकाली के प्रसन्नतार्थ सांसारिक त्रितापों से संतप्त जीवों का उद्धार करने की इच्छा से चतुर्विध पुरुषार्थो का साधनरूप इस दक्षिणा कालीकर्पूर स्तव को प्रकट कर रहे हैं। कर्पूरमिति--

महाप्रलय के समय कोटि ब्रह्माण्डनायिका, विश्व की उत्पादिका, पालिका और संहारिका जगदम्बिका अपने शिवशक्तिमयशरीर को एक करके सदास्थित हो जाती है। चिरकाल व्यतीत हो जाने के पश्चात्-एकाऽहँ बहुप्रजेयम्-जब उस महामाया की मैं एक हूँ अनेक बनूं ऐसी इच्छा होती है तब वह अपने प्रतिबिम्ब को देखती है। प्रतिबिम्ब ही माया है। माया से ही संसार की सृष्टि (उत्पति) होती है। इसलिए माया का आश्रय ग्रहणकर मानसिकशिव की कल्पनाकर सृष्टि की उत्पत्ति के निमित्त शिव को पतिरूप में स्वीकार करती है।

महाप्रलयमासाद्य कोटिब्रह्माण्डनायिका ।
शिवशक्तिमयं देहमेकीकृत्य सदा स्थिता ॥

बिन्दुव्यापकरूपेण स्वरूपं बिभ्रती परम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु स्वबिम्बं पश्यती शिवा ॥

तद्बिम्बन्तुभवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम् ।
सृष्टेरुत्पादनार्थंतु भर्तृरूपमकल्पयत् ॥

रुद्रयामलतन्त्रमें ऐसा कहा गया है। इस स्तोत्रमें भगवान् महाकालने बाइस वर्णवाले (बाइस अक्षरों वाले) दक्षिणाकालिका के मन्त्र का माहात्म्य वर्णन करने की इच्छा से उसके अवयवरूप प्रत्येक बीज का महत्व एवं पृथक् २ साधना विधि का निर्देश तथा प्रत्येक बीज पृथक् भी मंत्र है यह भी सिद्ध किया है। प्रथमतः इस पद्य

मंत्रके आदि बीज 'क्रीं' का उद्धार किया गया है और उसके जप का फल भी बताया है। कर्पूर शब्द में मध्य (ऊ) दीर्घ ऊकार, अन्त्यः अन्तिमस्वर-अकार, पकार रहित क् में सेन्दु-(इन्दु सहित), अनुस्वार सहित वामाक्षि-दीर्घईकार मिलने से क्रीं 'बीज' बनता है। ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे-ध्वान्त=गाढ़ान्धकार सदृश धाराधर=मेघ के सदृशवर्णवाली हे त्रिपुरहरवधु, हे शिवपत्नि, तुम्हारे इस 'क्रीं' बीज को तीनबार भी-'क्रीं क्रीं क्रीं' इसरूपमें जो जपता है उसके मुख कुहर=मुखविवरसे स्वच्छन्द-धाराप्रवाहरूपमें गद्यतथा पद्यमयी वाणी निकली हुई शोभित होती है। उसे तत्काल सर्व सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ॥१॥

**ईशानाःसेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि,**
**द्वन्द्वं ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित् ।**
**जित्वा वाचामधीशं धनदमपिचिरं मोहयन्नम्बुजाक्षि,**
**वृन्दं चन्द्रार्धचूड़े प्रभवति स महाघोरशावावतंसे ॥२॥**

आद्य तीन 'क्रीं' बीजों का उद्धार करके अब इस श्लोक में दोनों कूर्च बीजों का 'हूँ हूँ' का उद्धार कहा जा रहा है ईशान इति-

अर्धचन्द्र से सुशोभितशीशवाली हे महेशि शिवपत्नि भयानकशिर एवं हाथों के आभूषण धारिणी तुम्हारा दूसरा बीज-ईशान-हकार-बामश्रवण दीर्घ ऊकार और इन्दु=बिन्दु=अनुस्वार से युक्त अर्थात् हूँ हूँ को मन्दबुद्धि भी जो साधक एक बार भी कदाचित् यदि जप लेता है तो उस जप के प्रभाव से वह बुद्धिमत्ता में देवगुरु श्री बृहस्पतिजी को जीत लेता हैं और धनसम्पत्तिरूप महदैश्वर्य में धनपति=कुबेरजीको जीत लेता है तथा कमलनेत्रों वाली कामिनियों के समूह को मोहित कर लेता है। यहां अर्धचन्द्रादिविशेषण से अपने भक्तके मानसिक अज्ञानान्धकार को तत्काल मिटाकर प्रज्ञावान बना देती हो। महाघोरशावावतंसे इस विशेषण से-राक्षसादिकों को भयभीत करना तथा भक्तों के कामक्रोधादि शत्रुओं की निवृत्ति कर उन्हें सिद्धिसम्पन्न बनाना सिद्ध होता है। भाव यह है कि मूर्ख

भी भक्त किसी समय किसी प्रकार भी यदि 'हूँ हूँ' बीज जप करके साधना पूरी कर लेता है तो उस जप के प्रभाव से वह विद्या एवं वैभव सम्पन्न होकर सर्वविध सामर्थ्यवान् बन जाता है।

**ईशौ वैश्वानरस्थः शशधर विलसद् वामनेत्रेणयुक्तो,**
**बीजंते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति ।।**
**द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमभितो वश्यभावं नयन्ति,**
**सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति ।।३।।**

इस पद्य में क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ इस बीजपंचक का उद्धार करके उसके आगे के दोनों मायाबीजों का (ह्रीं ह्रीं) उद्धार कहा गया है। ईशाविति--

विगलित चिकुरे-विकीर्णकेशवाली ( सर्वदा आनन्दमग्न ) सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने-सृक्कद्वन्द्व--दोनों ओष्ठ-अस्र=रक्त-धाराद्वयधरवदने-रुधिरप्रवाहयुगलधारी ऐसे मुखवाली अर्थात् दोनों ओठ नवीनरक्त से रंजित हो रहे हैं रक्त की धारा दोनों ओठों से गिर रही है ऐसे मुखवाली हे मां दक्षिणकालिके (सकलसाधकों के सदैव अनुकूल रहनेवाली) अन्यत्-पूर्वोक्त से भिन्न द्वन्द्व-दो बार कहागया-ईशौ दोनों हकार वैश्वानरस्थः-वैश्वानर रेफ-उससे संयुक्त, शशधर=अनुस्वार-से शोभित एवं वामनेत्र दीर्घ ईकार से युक्त-इसर प्रकार 'ह्रीं' यह बीज बना। इससे अभिन्न देवस्वरूप की भावनासे सुशोभित तुम्हारा बीज दक्षिण कालिके हे मां उपर्युक्त ह्रीं ह्रीं दोनों बीजों को जो साधक जपते हैं उनके शत्रु नष्ट हो जाते हैं और वे तीनों लोकों को अपने वश में कर लेते हैं। निष्कर्ष यह है कि देवतास्वरूपाभिन्न दोनों मायाबीजों को जो साधक जपते हैं उस जप के प्रभाव से उनके द्वेषी स्वयमेव विनष्ट हो जाते हैं क्योंकि जब तीनों लोकों के प्राणी उनके वशीभूत हो जाते हैं तो शत्रुओं की सम्भावना ही नहीं शेष रह जाती है ।।३।।

**ऊर्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं ततोऽधः,**
**सव्येऽभीतिं वरंच त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च ।**

जप्त्वैतन्नाम ये वा तव विमलतनुं भावयन्त्येतदम्ब,
तेषामष्टौ करस्था प्रकटित रदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥४॥

'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' पूर्व पद्यों में इन सातों बीजों का उद्धार करके अब इस पद्य में मां भगवती काली के स्वरूप का तथा नाममंत्र का ध्यान और जप का वर्णन करते हैं-ऊर्ध्वमिति-मां महाकाली के ऊपर के वामपाणि=बांयें हाथ में कृपाण (तलवार), नीचे के बायें करकमल में सद्यः कटा हुआ शिर, एवमेव दक्ष दाहिने ऊपरी हाथ में अभयमुद्रा और नीचे के दाहिने कर में वरमुद्रा सुशोभित है। हे त्रिलोकपापहारिणि मां दक्षिण कालिके! प्रकटित रदने-जिसके दीर्घ दांत मुख के बाहर दीख रहे हैं। हे मां तुम्हारे इस विमलरूप का ध्यान करते हुये दक्षिणेकालिके इस नाममंत्र का जो साधक जप करते हैं उनके हाथों में भगवान् त्र्यम्बक=सदाशिव की आठों सिद्धियाँ सदैव स्थित रहती हैं ॥४॥

वर्गाद्यं वन्हिसंस्थं विधुरतिबलितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मम्,
लज्जाद्वन्द्वंच पश्चात् स्मितमुखितदधष्ठद्वयंयोजयित्वा।
मातर्येवा जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपम्,
ते लक्ष्मीलास्य लीला कमलदलदृशः कामरूपाः भवन्ति ॥५॥

बीजसप्तक नाममंत्र का उद्धार करने के पश्चात् इस श्लोक में अन्तिम बीज वन्हिजाया (स्वाहा) का उद्धार करते हुये सम्पूर्ण बाइसवर्णात्मक मंत्र की साधना का महत्व प्रतिपादित करते हैं-वर्गाद्यमिति-मंद मंद मुस्कुराती हुई मुखवाली शिवपत्नि जगदम्बे! वर्गाद्यं 'क' वन्हिसंस्थं रेफयुक्त विधु अनुस्वार-रति-दीर्घ ईकार से युक्त क्रीं बीज बना उसकी तीनरूप-क्रीं क्रीं क्रीं और दोनों कूर्च बीज-हूं हूं, तथा दोनों लज्जा बीज 'ह्रीं ह्रीं' इस के पश्चात् ठद्वय-स्वाहा जोड़कर नवाक्षरी 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' इस मंत्र स्वरूप को जो साधक जपते हैं वे लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदृशः-मां भगवती महालक्ष्मी के ऊपर के दोनों हाथोंमें कमलविद्यमान रहते हैं वे उनके लीलाकमल हैं। लक्ष्मीलास्य, लक्ष्मी का प्रचार-लक्ष्मी के

प्रकाशक-विक्षेपादि विलास (आनन्द) उन कमलों के सदृशनेत्रवाले तथा कामरूपी हो जाते हैं। ऐसे साधक जिसकिसी को प्रेमपूर्वक देखने की कृपा करते हैं उन्हें उनकी अनुकम्पा से प्रचुर ऐश्वर्य का तुरन्त लाभ हो जाता है और वे साधक कामरूप-अर्थात् समस्त कामनापूरणार्थ समर्थ होते हैं। उनकी आत्मा एवं शरीर देवत्व प्राप्त कर लेते हैं ।।५।।

**प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपिचपरंबीजमत्यन्तगुप्तं,**
**तन्नाम्नायोजयित्वासकलमपिसदाभावयन्तोजपन्ति ।**
**तेषांनेत्रारविन्दे विहरति कमलावक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे,**
**वाग्देवीदेवि मुण्डस्रगतिशयलसत्कंठपीनस्तनाढ्ये ।।६।।**

इस पद्यमें मां भगवती कालिका के मंत्रों के भेदों का वर्णन कर रहे हैं-मुण्डस्रगतिशयलसत्कंठ पीनस्तनाढ्ये=मुण्डों की मालिका से अत्यन्तशोभायमान कंठ और पीन (मोटे-उन्नत)स्तनों से ऐश्वर्यवती हे देवि कालिके ? जो साधक अत्यन्त गुह्यपूर्वोक्त बीजों का एक वा दो या तीन का दक्षिण कालिके नाम जोड़कर जप करते हैं। इस प्रकार दश मंत्र बनते हैं। जैसे-१ क्रीं दक्षिणे कालिके, २ हूं दक्षिणे कालिके, ३ ह्रीं दक्षिणे कालिके- ये तीनों सातवर्णों के एवं क्रीं हूं दक्षिणेकालिके १, क्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके २, हूं क्रीं दक्षिणेकालिके ३, ह्रीं क्रीं दक्षिणेकालिके ४, हूं हूं दक्षिणेकालिके ५, ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके ६-ये ६ भेद आठ अक्षरोंके- क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके, नववर्णात्मक एक मंत्र-इस प्रकार सब मिलकर दशमंत्र हुये। एवमेव सकलमपि-समस्त बीज सप्तक और नाम मिलाकर तेरह वर्णों का एक मंत्र 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके' बनता है अथवा पूर्वोक्त कर्पूरमित्यारभ्य-यहां से कहा गया पूर्ण बाइस अक्षर का पूर्ण (द्वाविंशत्यर्णवोंका) मंत्र अथवा प्रत्येक काली बीज एक एक-दो दो-तीन तीन बीजों को तुम्हारे नाम से जोड़कर और स्वाहा को भी मिलाकर 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' १, 'क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कलिके स्वाहा' २, 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ३, -इन तीनों मंत्रों में से किसी एक को

तुम्हारे स्वरूपके ध्यानस्थ होकर जो जपते हैं उनके नेत्र कमलों में कमला मां भगवती महालक्ष्मी बिराजमान रहती हैं और उनके मुखचन्द्रमें (चन्द्रमुखेवा) मां सरस्वती बिराजती हैं। ऐसे परम-सिद्धसाधकों के दृष्टिपातमात्र से साधारण व्यक्ति भी परमैश्वर्यवान बन जाता है तथा एतादृशभक्त–इस प्रकारके भक्त समस्त विद्याओं के निधि होते हैं ॥६॥

**गतासूनां बाहुप्रकट कृतकांची परिलस–**
**न्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम् ।**
**श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत–**
**प्रसक्तां त्वां ध्यायन् जननि जड़चेता अपि कविः । ७ ।**

इस श्लोक में ध्यान विशेष का वर्णन किया जा रहा है– गता-सूनामिति–हे जगज्जननि मां कालिके ! त्रिभुवनविधात्रीं–ब्रह्मादि समस्त देवादिकों की उत्पादिका होने से-त्रिलोकों की सृष्टि करने-वाली, त्रिनयनां–सोमसूर्याग्नि रूप तीन नेत्रोंवाली, तथा मृतकों के (दुष्टदैत्योंके) और भक्तों के शवरूपकाम–क्रोधादिशत्रुओं के बाहु-समूहोंसे बनी कांची=मेखला (करधनी) से शोभितनितम्बवाली, दिग्बस्त्रां=नग्नां,(भक्तों के कामादि दोष निवृत्यर्थ ईदृशी,)श्मशानमें स्थित शवरूपपर्यंकमें (अर्थात् शिवहृदयमें) महाकाल सुरत प्रसक्तां, सृष्टि के निर्माण हेतु स्वीकृत महाकाल शिवरूप पतिके साथ विपरीत रतिमें प्रवृत्त ऐसा ध्यान करते हुये जड़चेता=मूर्ख साधक भी जो तुम्हारे मंत्र की जपादि विधिसे साधना करता है, वह सर्वोत्तम कवि बन जाता है। इसका भाव यह है कि पूर्वोक्त विशेषण बिशिष्ट भगवती कालिका को मूलाधारस्थित स्वयंभूलिंग वेष्टित कुल कुण्ड-लिनी को भ्रूमध्य चक्र के ऊपर स्थित महाकालात्मक परमपुरुष के साथ चक्र भेदन क्रमसे तत्सम्बन्धात्मक सुरत में प्रसक्त मां काली के ध्यानसे कवि (क्रान्तदर्शी) हो जाता है यह साम्प्रदायिकों का रहस्य है ॥७॥

**शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः,**
**परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम् ।**

**प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरिसुरतेनातितुष्टां,**
**सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥८॥**

पूर्वोक्त स्वरूप को विशद करते हुये अन्य ध्यान कहा जा रहा है–शिवाभिर्घोराभिः–भयानक श्रृंगालीरूपधारिणी योगिनियों से या प्रत्यक्ष श्रृंगालियों से तथा मृतकों के समूहों के मुण्ड एवं अस्थि (हड्डियों) के समूहों से व्याप्त प्रज्ज्वलित चिता में प्रकटीभूत तारुण्यातिरेक से युवतीजनों को अतिक्रमण करनेवाली तथा विपरीत रतिसे सन्तुष्ट (तृप्त) जगत्संहारक महाकाल की पत्नी तुमको जो साधक जिसकिसी भी अवस्था में इस रूपमें ध्यानस्थ हो मंत्र की साधना करते हैं उनका संकट काल में भी कभी पराभव नहीं होता है। भाव यह है कि पूर्वोक्त भावना प्रकारवत् मूलाधार चक्रस्थ त्रिकोणात्मक अग्नि–कुण्ड में साधकों के भावना बल से आविर्भूत भ्रूमध्यस्थ आज्ञा चक्र में स्थित महाकाल के साथ क्रीड़ा करनेवाली भगवती कालिका का ध्यान करने वाले साधकों को सर्वत्र विजय प्राप्त होती है यह रहस्य है ॥८॥

**वदामस्तेकिं वा जननि वयमुच्चैर्जडधियो,**
**नधाता नापीशो न हरिरपि नते वेत्ति परमम् ॥**
**तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्मान नमिते,**
**तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥९॥**

महाविद्या सिद्धविद्या विद्याभेदैः प्रतिष्ठिता ।
उपविद्यादि भेदैश्च कालिकैव सदा भुवि ॥
सर्वविद्या कालिकायां संस्थिता एव पार्वति ।

विद्याभेदसे दशमहाविद्यायें प्रतिष्ठित हैं परन्तु उपविद्यादिभेदों से युक्त पृथिवीमें कलिका ही सदैव प्रतिष्ठित रही हैं। शिवजी माता पार्वतीजी से कहते हैं हे पार्वति समस्त विद्यायें कालिका में ही संस्थित हैं। तंत्रान्तरों के कथनानुसार ऐसे वाक्यों से सकलविद्या स्वरूपत्व, सर्वातिशयत्व एवं सर्वदुर्गेयत्व कारण से कहा गया है वदामः किमिति––

सद्‌भक्तों का कथन है कि हे जननि जगन्माता कालिके अनमिते-किसी को भी नमन न करनेवाली अर्थात् देवादि समस्त लोकवन्द्ये प्रागल्भस्वभाववाली यद्यपि तुम्हारा परम तत्व सर्वान्तर्मनों वागतीत तत्व गुणसाकल्य अथवा पारमार्थिक स्वरूप को धाता—ब्रह्मा, शिव एवं भगवान् विष्णु भी नहीं जानते-वर्णन करने में असमर्थ हैं तब मन्दबुद्धिवाले हम लोगों की क्या सामर्थ्य है। प्रथम तो हम सब ऊँचे मूर्ख हैं, आपके विषय में क्या और कैसे कुछ कह सकते हैं। तथापि आपकी भक्ति हमें कुछ कहने के लिए प्रेरित करती है कि मां का कुछ तो गुणगान करना ही चाहिये। एतावता यह अज्ञान मूलक वर्णन हमारी चपलता है। इस—चपलता रूपी अपराध के दोषी हम सब क्षमा के योग्य हैं। क्यों कि अष्टविध पाशों में बंधे होने से हम पशु हैं इस लिए पशुरूपी अज्ञानी बालकों पर क्रोध करना समुचित नहीं है ऐसी नीति है ॥९॥

घृणाशंकाभयं लज्जा जुगुप्सा चेति पंचमी।
कुलंशील तथा जातिरष्टौ पाशा इमे स्मृताः॥
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तः सदाशिवः।

अर्थात्– कुल, शील, जाति, घृणा, शंका, भय, लज्जा एवं जुगुप्सा—इन आठों भावनाभिभूत जीव जब तक रहता है तब तक वह पशु कहा जाता है। परन्तु इन से ऊपर उठकर समदृष्टि हो जाने पर शिवत्व प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है शिवत्व की प्राप्ति गुरु कृपा से ही होती है।

**समन्तादापीनस्तनजघनदृग्यौवनवती,**
**रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्।**
**विवासास्त्वां ध्यायन् गलित चिकुरस्तस्य वशगाः,**
**समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥१०॥**

इस पद्य में अधिकारी विशेषता के उद्देश्य से रात्रि जप की विशेषता कही गई है। विवासा—वस्त्ररहित (नग्न) तथा गलित-चिकुर—बालखुले हुये, भालीभाँति परिपुष्ट स्तन एवं जंघावाली, दृष्टि

और तारुण्यवाली रमणी के साथ रतासक्त कोई भक्त रात्रि में यदि तुम्हारा ध्यान करता हुआ मंत्राभेद स्वाभेदपूर्वक तुम्हारे मंत्र को जपता है तो समस्त सिद्ध साधक उसके वश में हो जाते हैं। अथवा दक्षिणाचार में स्वपत्नी को और वामाचार में कुलनायिका को देवी की भावना से ध्यान करते हुये तथा स्वयं को शिवरूप की भावना करते हुये जप करनेवाला साधक सर्वोत्कृष्ट पाण्डित्य प्राप्त कर बहु-कालपर्यन्त पृथिवीपर सुखी जीवन बिताता है। परन्तु ऐसी पूजा साधना साधारण साधकों की नहीं है। इसे वे ही श्रेष्ठ साधक कर सकते हैं जो ऊर्ध्वरेता और पूर्णयोगी हों। रतासक्त होने पर भी जिनके मन में इन्द्रियजन्य सुख की भावना न हो तथा निश्चित मंत्र-जप की संख्या पूर्ण होनेपर भी साधक का वीर्य स्खलित न हो। रता साधन का यह विषय गुरु सम्प्रदाय से स्वाधिकार प्राप्ति से काम कला के स्वरूप को भलीभांति जानकर साथ ही आभ्यन्तर (पूर्वोक्त मूलाधार चक्रस्थ कुल कुण्डलिनी और आज्ञा चक्रोपरि स्थित परम शिव संबन्धी रत प्रकार में स्थित साधक रात्रि काल में काली मंत्र जपने से ही समस्त सिद्धाधिपत्व एवं मृत्युंजयत्व प्राप्त कर सकता है। यह विशुद्ध मार्ग अतिक्लिष्ट गुह्य और पूर्ण अनुभवी सद्गुरु तथा सम्प्रदायगम्य ही सुखावह हैं अन्यथा पतन अवश्यंभावी है ॥१०॥

**समाः स्वस्थीभूतां जपति बिपरीतां यदि सदा,**
**विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशय महाकालसुरताम् ।**
**तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः,**
**कराम्भोजे वश्या हरवधु महासिद्धि निवहाः ॥११॥**

पूर्वोक्त ध्यान के प्रकार में कुछ वैशिष्ट्य निरूपितकर अन्य-ध्यान का कथन कर रहे हैं समाः-इति--

हे हर वधु; शिवप्रिये; कालिके; समाः-बहुत कालपर्यन्त श्री महाकाल के साथ अतिशय बिपरीत सुरतानन्द प्रवृत्त एवं पश्चात् स्वस्थीभूत-अतितृप्त हुयी ऐसा तुम्हारा सदा ध्यान करते हुये जो साधक यदि तुम्हारे मंत्र को जपता है तो जप सिद्धिके पश्चात् भूतलमें

(ऐसी साधना के प्रभाव से) स्वच्छन्द विहार करनेवाले परमसिद्ध विद्वान् साधक के हाथों में समस्त महासिद्धियों के समूह वशीभूत होकर विद्यमान रहते हैं भाव यह है कि–भगवान् महाकाल के साथ विपरीत क्रीड़ासक्त एवं तदानन्द प्रमुदित श्री भगवती कालिका का ध्यान करते हुये जो साधक जप करता है वह सर्व बन्धनों से विमुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियां उसके स्वाधीन हो जाती हैं ॥११॥

**प्रसूते संसारं जननि जगतीं पालयति च,**
**समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरतिच ।**
**अतस्त्वां धाताऽपि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि,**
**महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौति भवतीम् ॥१२॥**

हे जगज्जननि–महाकालिके ! आप सृष्टिकाल में संसार को पैदा करती हो फिर उसको पालती हो, प्रलयकाल में पृथिवी आदि समस्त पंचभूतों का संहार भी करती हो, इस लिए ब्रह्माजी, त्रिभुवन पति विष्णु एवं शिवजी भी आपकी स्तुति यथार्थतया करने में असमर्थ हैं। तब हम सब संसारी जीव सम्पूर्णतया आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं। भाव यह है कि जहां आपकी स्तुति करने में सत्व-रज-तमो गुणाधिष्ठाता सृष्टि–स्थिति–संहारकर्ता विधि–हरि–हरादि त्रिदेव मूकत्व का अवलम्बन करते हैं वहां अन्य किनके बचनों की सामर्थ्य है। इस लिए स्तवन की हमारी यह धृष्टता क्षमा करने के योग्य है ॥१२॥

**अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान्,**
**विमूढास्ते मातः किमपि नहि जानन्ति परमाम् ।**
**समाराध्यामाद्यां त्वां हरिहरविरंच्यादिविबुधैः,**
**प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥१३॥**

'आरोग्यं भाष्करादिच्छेत्' इत्यादि वाक्यों के द्वारा तत्तत् लाभार्थ उन–उन देवताओं की उपासना की अपेक्षा से संसार में विविध कामना वाले प्राणियों के द्वारा विविधदेवताओं की आराधना

(उपासना) करते देखी जाती है किन्तु उन्हें यथार्थ लाभ नहीं मिलता है। इस लिए कहते हैं कि हे जगदम्बिके ! अन्य देवों को आपसे अधिक सामर्थ्य शाली भ्रमवश जानकर उनकी उपासना जो करते हैं वे मूर्ख हैं–जैसे कल्प वृक्ष को छोड़ कर भाग्यविहीन व्यक्ति जहां–तहां अन्यत्र भिक्षा मांगते फिरते हैं वैसे ही इन अन्य देवों के पूजकों की दशा है। क्यों कि वे जैसे कल्प वृक्ष के महत्व से अनभिज्ञ हैं वैसे ही सर्व साधारण व्यक्ति आपके यथार्थ परम तत्व को नहीं जानते हैं। किन्तु मैं तो सकल विश्व की हेतुभूत तथा विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा समाराधित तथा रतिरस रूप महान् आनन्द में आसक्त मूलाधार से ब्रह्म–रन्ध्र पर्यन्त षट्चक्र भेदन क्रम से यातायातात्मक महासुरत–क्रीड़ानन्द में प्रसक्त कुल कुण्डलिनी रूपिणी आपकी शरण में काया वाचा मनसा उपस्थित हूं–(शरणापन्न हूँ) ।।१३।।

**धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनम्,**
**त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।**
**स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकम्,**
**प्रसन्ना त्वं भूया भवमननुभूयान्मम जनुः ।।१४।।**

मां भगवती कालिका का सर्वात्मकत्व वर्णन करते हुये कहते हैं–हे माता काली कल्याणी (कल्याणगुणशालिनी) शिव पत्नि ! एक तुम ही पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाशादि सब कुछ हो। किं बहुना, समष्टि एवं व्यष्टि रूप से सब कुछ तुमही हो। जगत् उत्पादन हेतु भूतपंचक तुमसे भिन्न नहीं हैं। यही बात जगद्गुरु आदि शंकराचार्यजी ने सौन्दर्यलहरी में कही है। "मनस्त्वंव्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसीत्यादि"–इस प्रकार यदि आपही सर्वरूपा हो तो हे माता आपकी स्तुति क्या ? कुछ भी नहीं, क्यों कि स्तुति भी तो आपसे भिन्न नहीं है तब किस आश्रय से स्तुति की जाये। इस लिए अगतिक (अनाश्रित) मुझभक्तपर दया करके आप प्रसन्न होवें। कैसा प्रसाद ? अभिलषित है तो कहते हैं कि आपका भक्त मैं इस संसार का पुनः अनुभव न करूँ अर्थात् इस जन्म के पश्चात् मेरा जन्म

संसार में पुनः न होवे। जन्ममरणादि संसार चक्र से मुझे मुक्त करो यही मेरी अभिलाषा है ॥१४॥

**श्मशानस्थ: स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः,**
**सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम् ।**
**जपंस्तत् प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो,**
**महाकालि स्वैरं स भवति धरित्री परिवृढ़: ॥१५॥**

पूर्वोक्त पद्यों में मंत्रों के भेद, जप प्रक्रिया, देवता का ध्यानादि वर्णन कर अब इस पद्य में अधिकार विशेष के उद्देश्य से प्रयोग विशेष का उल्लेख कर रहे हैं। श्मशानस्थ इति–श्मशान में स्थित खुलेकेश, दिगम्बर (नग्न) स्वस्थनिराकुल (सावधान) निःशंक एक सहस्र अर्क (मदार) वृक्ष के पुष्पों को स्वकीय स्खलित वीर्य से युक्तकर पूर्वोक्त तुम्हारे मंत्रोच्चारण पूर्वक तुम्हारा ध्यान करते हुये हे महाकालि मां जो स्वतंत्र साधक अग्नि में (चिताग्नि में) आहुति देता है, वह भूपति हो जाता है अर्थात् वह सर्वमान्य सर्वश्रेष्ठ हो जाता है ॥१५॥

**विशेष**–तंत्रांतरों में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं जैसे विश्वसार तन्त्र में–

श्मशानस्थो भवेत्स्वस्थो गलितं चिकुरं चरेत् ।
दिगम्बरः सहस्रंच सूर्यपुष्पं समानयेत् ।
स्ववीर्ययुतं कृत्वा प्रत्येकं प्रजपन् स च ॥

काली तंत्र में भी–

स्वरेतोऽभ्यक्तपत्रेणाप्यर्कस्यैव सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद्देवीं सर्वसिद्धि स विन्दति ॥

यहां पुष्प की जगह पत्रग्रहण किया है। उत्तर तंत्र में आभ्यन्तरिक पूजन का उल्लेख है।

अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञान पुष्पंच पंचमम् ।
इत्युक्तैरुत्तमैः पुष्पैः पूजयेत्परदेवताम् ॥

अर्थात्-अहिंसा श्रेष्ठ पुष्प है, इन्द्रियों का संयम पुष्प है। दयापुष्प एवं क्षमापुष्प ज्ञान पुष्प पांचवां है, कथित इन उत्तमपुष्पों से पर देवता का पूजन करे।

गृहे सम्मार्जन्या परिगलितवीर्यंहि चिकुरम्,
समूलंमध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने।
समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपिसकृत् कालि सततम्,
गजारूढ़ो याति क्षितिपरिवृढ़ः सत्कविवरः ॥१६॥

प्रयोगान्तर कह रहे हैं-गृहे इति-हे कालिके मां जो साधक मध्याह्ने दिन के मध्यमें-अथवा साठघटिकात्मक रात्रि सम्बन्धि भाग, इस व्याख्या से मध्य रात्रि में कुज दिने-मंगलवार को प्रेमपूर्वक तुम्हारे मंत्र को सकृत्-एक बार भी उच्चारण (जप) कर गृह-शोधिका-घर की सफाई करने वाली दासी के समागम से परिगलित-स्खलित वीर्य (दासीरज एवं स्ववीर्य) और अपने मूल सहित अत्रुटित केश सम्मिलितकर प्रज्ज्वलित चिता में आहुति देता है-अर्थात् सम्मार्जिका की योनिरूप अग्नि कुण्ड में आहुति देता है वीर्य समर्पित करता है। चितायां वाक्य से श्मशान में इस प्रयोग का करना सापेक्ष्य है। ऐसी साधना करने वाला साधक जीवनपर्यन्त कवि श्रेष्ठ होकर पृथिवीनायकत्व प्राप्त कर गजारूढ़ जीवन बिताता है ॥१६॥

**विशेष**-तत्वतः मूलाधारस्थ वन्हिकुण्ड चिता में स्वतः प्रकाशत्वादि सामर्थ्य हारक वासनासहित अहंकार असत्यादि हबि को कुण्डलिनी मुखमें विद्यमान बुद्धि से आहुति दिया ऐसी भावना करे। यह अन्तर्याग प्रकार का उपदेश है ऐसा मानना चाहिये। ऐसे प्रयोग अन्य तंत्रों में भी देखे जाते हैं। कुल चूड़ामणि तंत्र में लिखा है--

नखं केशं स्ववीर्यंच यद्यत् सम्मार्जनीगतं,
मुक्तकेशो दिगावासो मूलमंत्रपुरःसरम्।
कुजवारे मध्यरात्रौ जुहुयाद्वा श्मशानके।

उत्तर तंत्र में इस प्रकार कहा गया है--

मांसं रक्तं तिलं केशं नखं भक्तं च पायसम् ।
आज्यं चैव विशेषेण जुहुयात्सर्वसिद्धये ॥
एवं कृतेन सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमाम् ॥
मूलाधारगते देवि देवताग्निसमुज्ज्वले ॥
धर्माधर्मान्विते त्र्यस्रैर्मूलमंत्र पुरःसरम् ।
अहं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात्सुधीः ॥
अहन्तासत्यपैशून्यकामक्रोधादिकं हविः ।
मन एव स्रुवः प्रोक्त उन्मनी स्रगुदीरिता ॥   इत्यादि ।

**सुपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषोमन्दिरमहो ।**
**पुरो ध्यायन् ध्यायन् जपति यदि भक्तस्तवमनुम् ॥**
**सगन्धर्वश्रेणीपतिरिव कवित्वामृतनदी ।**
**नदीनः पर्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ॥१७॥**

अन्य सुविलक्षण प्रयोग कहा जाता है सुपुष्पैरिति--

पुष्पशब्द रर्जामिश्रितवीर्य का वाचक है । हे महाकालिके । तुम्हारा सौभाग्यशाली जो भक्त कुसुमधनुषो-कामदेवके मन्दिर-(घर) में-योनि चक्र में सुपुष्पैराकीर्णं, रजबिन्दुओं से युक्त पुरः-अपने सम्मुख उपस्थित का (रजस्वला स्त्री की योनि का) ध्यान करते हुये तव-तुम्हारे मंत्र को जपता है (जपसंख्या दशसहस्र) जप का फल कहते हैं-वह साधक गन्धर्व श्रेणी पति (गन्धर्वों का राजा-चित्ररथादि सदृश) की तरह सप्तस्वर-संगीतवेत्ता और कवित्वरूप अमृत की नदी का पति नदीन (समुद्र) बन जाता है तथा पर्यन्ते-मृत्यु के पश्चात् परम पद में लीन हो जाता है। अपुनरागमन रूप तवात्मक-तुम्हारे पद में महाकाल-महाकाली सामरस्य रहस्यारहस्यात्मक पद में यह गूढ़ार्थ है, लीन हो जाता है। अर्थात् तथाविध सामरस्य रहस्यानन्द निर्भरतामग्न और प्रभुत्वापन्न

भी हो जाता है। भाव यह भी है कि निरतिशय भक्तिमान् जो साधक मूलाधारस्थ त्रिकोण चक्र का तथाविध वासना विशेषात्म-पुष्पों से युक्त का एकाग्र बुद्धिसे काली मंत्र जपता है वह जप के प्रभाव से साहित्य-संगीतमर्मज्ञप्रवर होकर नानाविध ऐहिक भोगों का आनन्द भोगकर अन्त में महासामरस्यात्मक सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१७॥

**त्रिपंचारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनाम् ।**
**महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम् ॥**

**समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो ।**
**जनो यो ध्यायेत्त्वामपि जननि स स्यात् स्मरहरः ।।१८॥**

इस श्लोक में यंत्रविशेष भावनायुक्त ध्यानप्रकार कहा गया है। त्रिपंचारे इति-योगाभ्यासी न होने वाले साधारण साधकों के लिए शिवभाव सम्पादक यह योग बताया गया है। हे जननि कालिके ! तीन त्रिकोणों की पांच आवृत्ति से मां काली का यंत्र पंद्रह कोणों का होता है। स्वामुखाग्र उसमें साधारण व्यक्ति भी जो साधक उसके मध्यबिन्दु में शवशिव हृदि-शवभावापन्न उत्तान शायी शिव (पति) के हृदयमें स्मेरवदनां-रतिरसानन्द से मन्दहास युक्त, महाकालाख्य स्वप्रिय (वल्लभ) के साथ उच्चैर्मदनरसलावण्य निरतां-उत्कृष्ट मदनरस-प्रौढ विपरीत सुरत में लावण्य (सौन्दर्य) में निरत प्रसक्त ऐसी तुमको ध्यानैकाग्रता से त्वदेक प्रवण चित्त होकर 'देवोभूत्वा देवं यजेत्' इस सिद्धान्त के अनुसार तथाविधध्येय सिद्धि के लिए स्वयं भी तथैव विपरीत रती होकर रात्रि में जो साधक उपर्युक्त तुम्हारा ध्यान करता है वह साक्षात् शिव हो जाता है। भावना सिद्धि से विषय बासना वशी भावादि राहित्य सापेक्ष्य है। भावना प्रकार पूर्वोक्त रीति से जानना चाहिये। इस सिद्धि में भावना की दृढ़ता ही मुख्य है। भौंरी की साधना भावना इस सिद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यद्यपि साधना भौंरी द्वारा लाई गई इल्ली में स्थित जीव की है ॥१८॥

**सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमसिते,**
**परं मेषं चौष्ट्रं नरमहिषयोश्छागमपि वा ।**
**बलिं ते पूजायामपिवितरतां मर्त्यवसताम्,**
**सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥१९॥**

बलिदान से भी सिद्धियां प्राप्त होती हैं यह स्पष्ट कर रहे हैं–सलोमास्थि–इति। हे असिते–श्यामे कालिके ! तुम्हारी पूजा में पूजांग-हेतु स्वेच्छया न तु किसी के अनुरोध से लोम, अस्थि सहित मार्जार–बिलार सम्भूत पलल (मांस) मेष– (भेड़ा) का, ऊँट का, मनुष्य का, महिष– (भैंसों) का, अन्यों का न मिलने पर बकरे का विधान है। रोगादि रहित व्रणादि दोष हीन ग्राह्य है। ऊपर कहे गयों की लोमादि सहित मांस बलि देने वाले मृत्यु लोक निवासियों को पगपग पर अपूर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥१९॥

**विशेष**–यहां पर अणिमादि तथा स्वकार्यसम्पादिकादिसिद्धियाँ गृहीत हैं। दक्षिण मार्गी सात्विकों के लिए द्राक्षा– (मुनक्का), खजूर, लकुच, लिसोड़ा, आम, आमला, बेल, अनार, लौकी, जामुन, कूष्माण्ड, कटहल, ककड़ी आदि की बलि देने का विधान है। ये बलियाँ भी बकरे आदि के तुल्य महत्व वाली मानी गई हैं। जैसा कि उल्लेख है––

सात्विको ब्रह्म निष्ठश्च यश्च हिंसाविवर्जितः ।
तेन दद्युः पशुबलिमनुकल्पं ददत्वपि ॥
कूष्माण्ड पनसालाबु कर्कटी बिल्वदाड़िमाः ॥
द्राक्षा खर्जूर लकुच रसालामलजाम्बुकम् ।
बलितुल्यानि चैतानि छागतुल्यानि तृप्तिषु ॥

**वशीलक्षं मंत्रं प्रजपति हविष्याशनरतो,**
**दिवा मातर्युष्मच्चरणकमलध्याननिरतः ।**
**परं नक्तं नग्नो निधुवन विनोदेन च मनुं,**
**जपेल्लक्षं सम्यक् स्मरहरसमानः क्षितितले ॥२०॥**

पुरश्चरण के बिना प्रयोग असम्भव है। इस लिए पुरश्चरण की आवश्यकता प्रतिपादन करते हैं वशी लक्षमिति--

हे मां कालिके ! दिन में वशी जितेन्द्रिय एवं हविष्यासी-दूध-दधि-फलादि भोजी तथा तुम्हारे ध्यान में तत्पर जो साधक लक्ष-संख्या परिमित विधिपूर्वक तुम्हारे मंत्र का जप करता है और रात्रि में नग्न सुरतोत्सव युक्त पुनः लक्ष संख्या जप करता है ऐसा भक्त पृथिवी तलपर स्मरहर-(भगवान् शिव) के समान हो जाता है ॥२०॥

**विशेष**-काली तंत्र में कहा है कि--

आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथाविधि ।<br>
लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्यासी (जितेन्द्रियः) दिवा शुचिः ॥<br>
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यः शय्यायां लक्षमानतः ।<br>
ततः सिद्धमनुर्मंत्री प्रयोगार्हो नचान्यथा ॥

अर्थात्-पहले नियम पूर्वक यथाविधि पुरश्चरण करे। दिनमें दक्षिणाचार से पवित्रता पूर्वक लक्षसंख्या में मंत्र का जप करे और रात्रिमें पान खाकर शय्यापर लाख संख्या जप की पूर्ण करे। इस प्रकार मंत्र सिद्ध साधक प्रयोग करने के योग्य होता है अन्यथा नहीं। काली तंत्र में ऐसा भी उल्लेख है-

नित्यं जपं करे कुर्यात् न प्रयोगे कदाचन् ।<br>
प्रयोगे विहिता माला तत्तत्कर्मानुसारतः ॥<br>
वश्ये पद्‌माक्षमाला स्याच्छान्तौ शंखमयीभवेत् ।<br>
निम्बारिष्टात्मिकास्तम्भे द्वेषणे प्रेत दन्तजा ।<br>
अश्वदन्तोद्‌भवोच्चाटे मारणे खरदन्तजा ॥<br>
शतं वाथ तदर्धं वा सर्वं साधारणे जपे ।<br>
पंचाशद्‌भिः काम्यकर्म सिद्धिः स्याच्चतुरुत्तरैः ॥<br>
अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ इत्यादि।

अर्थात्-हाथ में नित्य जप करे परन्तु प्रयोग में नहीं क्योंकि प्रयोगों में तत्तत् कर्मानुसार मालायें विहित हैं-जैसे-वश्य कर्म में

पद्म के फलों की (कमल गट्टों की) शान्ति में शंख की, स्तम्भन में नीम और रीठा के फलों की, द्वेषण कर्म में मृतक के दाँतों की, उच्चाटन में अश्व (घोड़े) के दातों की तथा मारण में गधे के दाँतों की माला का उपयोग किया जाता है। सर्व साधारण जप में सौ अथवा पचास की संख्या, काम्यकर्म की चौवन संख्या जप से सिद्धि कही गई है। सर्व सिद्धियों के लिए मनीषियों ने एक सौ आठ संख्या बताई है।

मुण्डमाला तंत्रमें ऐसा उल्लेख है--

प्रातः कालं समारभ्य जपेन्मध्यन्दिनावधि ।
प्रथमेऽहनि यज्जप्तं तज्जप्तव्यं दिनेदिने ॥

यह दिवा जप का नियम है। रात्रि जप का नियम इस प्रकार है--

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ।
निशायान्तु प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्नच ॥

अर्थात् रात्रि का प्रथमप्रहर बीतजाने के पश्चात् तीसरे प्रहर तक रात्रि में जप करना चाहिये रात्रि शेष होनेपर जप नहीं करना चाहिये।

**इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणमनु,**
**स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ॥**
**निशार्धे वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति,**
**प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥२१॥**

दो श्लोकों में इस स्तोत्रके पाठ का फल वर्णन किया गया है।

इस स्तोत्र का पाठ वाग्वैभव साधक है ऐसा कहते हैं—इदं स्तोत्र-मिति—हे माता कालिके ! तुम्हारे बहुविध मंत्रोद्धार प्रकारों का प्रदर्शक, महाकाल सहित महाकाली पादुका पूजन, हवन, बलिदान आदि प्रकारों के प्रपंच का प्रकाशक तथा तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप

निर्मित यह काली कर्पूर स्तोत्र अर्धरात्रि में अथवा पूजा के समय जो साधक पढता है उस साधक का प्रलाप भी (असम्बद्ध वाक्य भी) कवित्वामृतरस होकर निकलता है अर्थात् जो साधक पूजाविधान पुरश्चरण आदि प्रपंच साधन में असमर्थ हैं रात्रि में पूजा के समय केवल यह स्तवपाठ ही करलेता हैं तो पाठ की महिमा से उसकी अंट-संट वाणी भी गद्य पद्यमयी सरस कविता जैसी मधुर और मनोरम हो जाती है ॥२१॥

**कुरंगाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं,**
**वशस्तस्यक्षोणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ॥**
**रिपुः कारागारं कलयति परं केलिकलया,**
**चिरं जीवन्मुक्तः स भवति च भक्तः प्रतिजनु ॥२२॥**

कर्पूरस्तव पाठक साधक के लिए पाठफलान्तर कहते हैं कुरं-गाक्षीत्यादि-हे मां कालिके ! कर्पूरस्तव पाठक साधक का कुरंगाक्षी वृन्द-मृगनेत्री अति सुन्दरी नाइकाओं का समूह प्रेम से विह्वल होकर तत्सम्बन्धि भोगादि सुख साधन के लिए (उसका) अनुसरण करता है। अनुरागातिरेक से चंचलचित मृगाक्षीसमूह आकृष्ट होकर उसकी समीपता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है तथातत्सा-मयिक राजा भी उसके वशी भूत होकर विविधप्रकारसे उसकी सेवा करता है। एवमेव सम्पत्ति सम्भार से युक्त वह धनपति कुबेर देवता के सदृश हो जाता है। इसी प्रकार उस साधक का शत्रुवर्ग कारागारसेवी हो जाता है अर्थात् उसके प्रतिकूल आचरण करने में असमर्थ हो जाता है। वह क्रीडा कौशलयुक्त बहुकालपर्यन्त सब प्रकार के ऐहिक सुखभोगता हुआ जन्म मरण रूप प्रकृति चक्र से सर्वथा मुक्त हो जाता है ॥२२॥

महाकालसंहिता में उल्लिखित श्रीपार्वती-शिव सम्वाद रूप में इस स्तव विषयक षट्कर्मादि साधनों का विषय वर्णित किया जाता है।

कर्पूराख्यमिदंस्तोत्रं यदुक्तं भवता पुरा ।
षट्कर्मसाधनं तस्य प्रयोगं वद शंकर ॥

शिव उवाच--

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कर्पूरस्तवसाधनम् ।
सकृत्कृतेऽपि देवेशि काली तुष्टा भवेत्सदा ॥
शनिभौमदिने देवि स्नात्वा प्रयतमानसः ।
सम्पूज्य कालिकां देवीं संकल्पं सम्यगाचरेत् ॥
कृत्वा षोढादिकं न्यासं पठेत् स्तोत्रमनुत्तमम् ।
अयुतैकप्रमाणेन तद्दशांशं हुनेत्सुधीः ॥
तर्पणं त्वभिषेकं च ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
पश्चात् स्वकार्यसिद्धयर्थं प्रयोगानाचरेत्सुधीः ॥
प्रयोगमात्रे देवेशि अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
यो जपेत् सर्वकार्यार्थं कामना भेदभावितः ॥
आकर्षणे वशीकारे मारणोच्चाटने तथा ।
राज्ञांभये समुत्पन्ने दुर्भिक्षे प्राणसंकटे ॥
न्यासोत्पत्तौ महेशानि रोगशोकभये तथा ।
पठेत् स्तोत्रं महाकाल्याः सर्वशान्ति प्रयच्छति ॥
कुमारीपूजनं चान्ते कर्तव्यं सुसमाहितैः ।
एवं कृते महेशानि सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥

यहां पुरश्चरण के विषय में नहीं कहा गया है । इस लिए उपर्युक्त को सामान्य पाठ ही समझना चाहिये ।

रुद्रयामल तन्त्र में भी कहा गया है--

सहस्रनामस्तोत्रेषु कवचेष्वपि पार्वति ।
तत्र तत्रादितो या हि सा वा कार्या पुरस्क्रिया ॥
यत्र नोक्ता पुरश्चर्या तत्रैव तु विधीयते ।
अयुतं तत् पुरश्चर्या स्तोत्रमात्रे प्रकीर्तिता ॥
स्तोत्रमध्ये स्थितं यद्यत् सर्वं स्तोत्ररूपकम् ।
फलस्तुत्यादिकं देवि ! अंगमित्यभिधीयते ॥
आद्योपान्तं बिना देवि फलमर्धं प्रकीर्तितम् ।
अत्रार्थे प्रत्ययो देवि षडंगाद्या यथा स्मृताः ॥

हवनं कवचादीनां श्लोकान्ते विहितं तथा ।
आद्योपान्तं पठित्वा वा पश्चात्तु हवनं मतम् ॥
अथवा देवदेवेशि नामान्ते हवनं मतम् ।
उपक्रमोपसंहारे श्लोकान्ते हवनं तथा ।
आदौ पूर्णं तु सम्पाठ्य तथैवान्ते महेश्वरी ॥
मध्ये नामानि पाठ्यानि पुरश्चर्या यथा भवेत् ।
तर्पणे चाभिषेके च कुर्यादेवं महेश्वरि ॥ इति

स्तोत्र पाठ में क्यानियम हैं यह तंत्रान्तरों में नियतरूप से बताया गया है ।

विश्वसार तंत्र में कहा है कि--

ऋषिच्छन्दो देवतादित्यस्य स्तोत्रं पठेत्ततः ।
न्यासं बिनाकृते देवि भवेत् तुच्छफलं यतः ॥

इस लिए न्यास आवश्यक है ।

काली कर्पूरस्तोत्र के महाकाल ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, दक्षिण-कालिका देवता हैं । हलो बीज है । स्वराः शक्तयः । अव्यक्त कीलकं । दक्षिणकालिका-देवता प्रसाद सिद्धयर्थे तत्तत्कामना सिद्धये वा विनियोगः ।

स्तोत्र हेतु से--

ऋषिच्छन्दाद्यनुक्तौ तु ऋषिः शिव इतीरितम् ।
गायत्रीछन्द आदिष्टं हलो बीजानि पार्वति ॥
स्वराः शक्तय इत्युक्ता अव्यक्तं कीलकं मतम् ।
स्तुत्यदेवप्रसादादिकाम्यार्थे विनियोजनम् ॥

जिस स्तोत्र में ऋषि और छन्दादि न कहे गये हों वहां शिव-ऋषि, गायत्री छन्द, स्वरों को शक्ति, हलो बीज, जिसदेव का स्तोत्र हो उसके प्रसाद सिद्धय्यर्थे-विनियोगः ऐसा समझना चाहिये । कामना हो तो उसे भी जोड़ लेना चाहिये । शक्तिसंगम तंत्र के अनुसार-इस स्तोत्रके लिए ह्रीं बीजं, हूं शक्ति, क्रीं कीलकं ऐसा भी उपदेश है ।

॥ इति श्री काली कर्पूरस्तोत्रस्य विनोदिनी टीका समाप्ता ॥

# श्रीपीताम्बरापीठ, संस्कृत परिषद्
# दतिया (म. प्र.) से प्रकाशित

## ग्रन्थ-सूची

| | | |
|---|---|---|
| १. श्रीबगलामुखी रहस्यम् | संस्कृत | २०-०० |
| २. पञ्चोपनिषद् प्रकाश भाष्य | अंग्रेजी | ४-५० |
| ३. प्रश्नोपनिषद् प्रकाश भाष्य | संस्कृत | ४-५० |
| ४. प्रश्नोपनिषद् प्रकाश भाष्य | अंग्रेजी | ८-०० |
| ५. आनन्द लहरी | संस्कृत | ७-०० |
| ६. नारदीय शिक्षा | " | १-५० |
| ७. श्री महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति | " | १०-०० |
| ८. कामकला विलासः | " | ५-०० |
| ९. महाविद्याचतुष्टयम् (तारा, धूमावती, भुवनेश्वरी, मातंगी) | " | ८-०० |
| १०. रेणुका-तंत्रम् | " | ६-०० |
| ११. शरभ-तन्त्रम् | " | ५-०० |
| १२. श्रीविद्यारत्नसूत्रम् | " | ३-०० |
| १३. पंचस्तवी | " | ०-५० |
| १४. तान्त्रिक-पंचांग | " | ८-०० |
| १५. घेरण्ड संहिता | संस्कृत-हिन्दी | ८-०० |
| १६. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् | हिन्दी | २-०० |
| १७. ईश्वर-गीता कर्मपुराणान्तर्गत | हिन्दी | ६-०० |
| १८. वैदिक-उपदेश | हिन्दी | १०-०० |
| १९. वैदिक-उपदेश | अंग्रेजी | १५-०० |
| २०. अथर्ववेदांग ज्योतिष | हिन्दी | ३-०० |
| २१. पुरश्चरण पद्धति | " | ३-०० |
| २२. लेख-संग्रह | हिन्दी | १२-०० |
| २३. वेदान्त प्रबोध | संस्कृत-हिन्दी | २-०० |
| २४. सिद्धान्त रहस्य | हिन्दी | ५-०० |
| २५. सिद्धान्त रहस्य | संस्कृत | ५-०० |
| २६. सिद्धान्त रहस्य | अंग्रेजी | ५-०० |
| २७. सिद्धान्त रहस्य | मराठी | ५-०० |
| २८. सौंदर्य लहरी | पद्यानुवाद | १-०० |
| २९. पुरश्चरण | पद्य | १-०० |
| ३०. त्रिपुर महिम्न स्तोत्रम् | संस्कृत-हिन्दी | ९-०० |
| ३१. चिद्-विलास | " | ४-०० |

| | | |
|---|---|---|
| ३२. चिद्–विलास | अंग्रेजी | ३–०० |
| | सजिल्द | ७–०० |
| ३३. सप्तविंशति रहस्यम् | संस्कृत | ७–०० |
| ३४. वातुलनाथ सूत्र | संस्कृत–हिन्दी | २–०० |
| ३५. शिवसूत्रं–भक्तिसूत्रञ्च | संस्कृत | ३–०० |
| ३६. शिवसूत्रं स्पंदकारिका | संस्कृत–हिन्दी | १–५० |
| ३७. मातृका चक्र विवेक | संस्कृत–हिन्दी | १५–०० |
| ३८ स्वरोदय विज्ञान | हिन्दी | ४–०० |
| ३९. योग विज्ञान प्रथम भाग | " | १६–०० |
| ४०. योग विज्ञान द्वितीय भाग | " | १०–०० |
| ४१. योग–दर्शन | संस्कृत | २–५० |
| ४२. योग–दर्शन | अंग्रेजी | ४–०० |
| ४३. छिन्नमस्ता नित्यार्चन | संस्कृत | ६–०० |
| ४४. ताराकर्पूरराजस्तोत्र | " | १–५० |
| ४५. केनोपनिषद् | भाषानुवाद | २–०० |
| ४६. ईशावास्योपनिषद् | " | ३–५० |
| ४७. माण्डूक्योपनिषद् | " | १–७५ |
| ४८. कठोपनिषद् | " | ५–५० |
| ४९. मुण्डकोपनिषद् | " | ६–०० |
| ५०. पराप्रवेशिका | हिन्दी–पद्य | ०–७५ |
| ५१. शाक्त सौरभ | हिन्दी | ७–०० |
| ५२. शाक्त सौरभ (ज्ञान खण्ड) | " | १२–०० |
| ५३. ललिता सहस्रनाम | संस्कृत | ३२–०० |
| ५४. भैरव–विज्ञान | हिन्दी | ९–०० |
| ५५. प्रश्नोपनिषद् | " | ५–०० |
| ५६. वह्वृचोपनिषद् | संस्कृत–हिन्दी | १–०० |
| ५७. तीर्थभारतम् | संस्कृत | २०–०० |
| ५८. भैरव सर्वस्व | " | २१–०० |
| ५९. निगमागम समन्वय | हिन्दी | ३०–०० |
| ६०. दार्शनिक चिन्तन और शाक्त सिद्धान्त | " | २०–०० |
| ६१. श्री स्वामिस्मृति ग्रन्थ | हिन्दी | १५१–०० |
| ६२. श्री धूमावती सपर्यार्णवः | संस्कृत | २०–०० |
| ६३. श्री गुरुपूजनपद्धतिः | संस्कृत | ११–०० |

आवश्यकतानुसार मूल्य में परिवर्तन हो सकता है।

